संपादकीय

तीसरे विश्वयुद्ध की आहट और हिरोशिमा का सबक

इक्यासी साल पहले छह अगस्त उन्नीस सौ पैंतालीस को अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा पर जो परमाणु बम गिराया था, वह सिर्फ एक शहर की तबाही नहीं थी। उसने चंद सेकेंड में लाखों लोगों को मार डाला और जो बचे, वे पीढ़ियों तक घिसट-घिसट कर मरने के लिए मजबूर हो गए। आज भी जब हम उस दिन की कल्पना करते हैं तो सबसे बड़ा डर यह है कि दुनिया फिर से उसी रास्ते पर चल पड़ी है। चारों तरफ बस लड़ाई-झगड़े और तनाव का माहौल है। रूस और यूक्रेन के बीच सालों से चल रही जंग रुकने का नाम नहीं ले रही है। उधर पश्चिम एशिया में अमेरिका, इजरायल, हमास, हिजबुल्लाह और ईरान के बीच का झगड़ा लगातार बढ़ता जा रहा है। ऐसा लगता है कि दुनिया के बड़े देश किसी भी दिन एक दूसरे पर परमाणु हमला कर देंगे। मशहूर वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने एक बार बहुत पते की बात कही थी कि मैं यह तो नहीं जानता कि तीसरा विश्वयुद्ध किन हथियारों से लड़ा जाएगा, लेकिन चौथा विश्वयुद्ध पत्थरों और लाठियों से लड़ा जाएगा। उनका यह कथन आज की कड़वी सच्चाई है। इस पूरी बर्बादी के पीछे साफ तौर पर अमेरिका की दादागिरी दिखाई देती है। वह अपने फायदे के लिए यूक्रेन के बहाने रूस को घेरने की जिद पर अड़ा है। नाटो सेनाओं का विस्तार करके वह आग में घी डालने का काम कर रहा है। पश्चिम एशिया के मामले में भी अमेरिकी नीतियां और उसके हथियार शांति लाने के बजाय लड़ाई को और भड़का रहे हैं। आज दुनिया के नौ देशों के पास लगभग बारह हजार परमाणु बम मौजूद हैं। जरा सोचिए, जिस एक बम ने हिरोशिमा को श्मशान बना दिया था, आज के बम उससे हजारों गुना ज्यादा खतरनाक हैं। ऊपर से बड़े देशों के नेता जरा-जरा सी बात पर परमाणु हमले की धमकी देने लगते हैं। रूस के राष्ट्रपति कई बार पश्चिमी देशों को परमाणु हमले का डर दिखा चुके हैं, जो साफ करता है कि इन महाशक्तियों का अहंकार कितना बढ़ चुका है। ऐसे समय में संयुक्त राष्ट्र संघ यानी यूएनओ की भूमिका बिल्कुल बेकार साबित हुई है। इस संस्था को बनाया ही इसलिए गया था ताकि दुनिया में दोबारा कोई बड़ा युद्ध न हो। लेकिन आज यह बड़ी ताकतों के सामने बिल्कुल लाचार और बेबस दिखती है। शक्तिशाली देश इसके नियमों को अपने जूते की नोक पर रखते हैं और अपनी वीटो पावर का इस्तेमाल करके मनमानी करते हैं। यूएनओ न तो रूस और यूक्रेन की लड़ाई रुकवा पाया और न ही पश्चिम एशिया में बेकसूर बच्चों और नागरिकों को मरने से बचा पा रहा है। गाजा में हजारों मासूमों की मौत पर भी यूएनओ कोई ठोस कदम नहीं उठा सका। अंतरराष्ट्रीय कानून सिर्फ कमजोर देशों को डराने के लिए रह गए हैं, जबकि ताकतवर देश खुलेआम नियमों की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं। जब पूरी दुनिया इस तरह आपस में लड़ रही है, तब भारत का नजरिया सबसे अलग और सही है। हमारे देश ने कभी किसी पर अपनी मर्जी थोपने या किसी की जमीन हड़पने की कोशिश नहीं की। भारत ने हमेशा दुनिया को युद्ध नहीं, बल्कि बुद्ध का रास्ता दिखाया है। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा था कि हम अपने दोस्त बदल सकते हैं लेकिन पड़ोसी नहीं। भारत इसी जिम्मेदारी के साथ आगे बढ़ता है। हम पूरी दुनिया को अपना परिवार मानते हैं। हमारे पास परमाणु हथियार हैं, लेकिन हमारी नीति बिल्कुल साफ है कि हम अपनी तरफ से पहले कभी किसी पर हमला नहीं करेंगे। यह एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी की बात है। भारत ने हमेशा अमेरिका जैसी ताकतों की मनमानी का विरोध किया है और एक ऐसी दुनिया की वकालत की है जहां सब बराबर हों।हिरोशिमा की त्रासदी झेलने वाले रो-रोकर दुनिया से यही कह रहे हैं कि जो उनके साथ हुआ वह दोबारा किसी के साथ न हो। हिरोशिमा दिवस सिर्फ एक पुराना किस्सा याद करने का दिन नहीं है। यह दुनिया के बड़े नेताओं को अपना अहंकार छोड़ने की चेतावनी देने का दिन है। हथियार और जंग कभी किसी मसले का हल नहीं हो सकते। नेताओं की सनक के चक्कर में आम जनता अपनी जान गंवाती है। ट्रम्प, पुतिन, शी जिंपिंग जैसे नेताओं को समझना होगा सृष्टि निर्माण पुनः नहीं होगा, बस इसी को सहेजने की दरकार है।

दुनिया में परचम लहराने वाली बेटियां देश का गौरव हैं

यह देश और नारी शक्ति के लिए गौरव की बात है कि ग्लासगो में आयोजित राष्ट्रमंडल खेलों में भारत ने कुल 13 स्वर्ण पदक जीते, जिनमें से 8 स्वर्ण पदक देश की बेटियों ने अपने नाम किए। मीराबाई चानू, अस्मिता डे, शर्मिला धनखड़ और महिला मुक्केबाजों के शानदार प्रदर्शन ने यह साबित कर दिया कि अंतरराष्ट्रीय खेल मंचों पर अब भारतीय नारी शक्ति का दबदबा है।स्वर्ण पदक जीतने वाली प्रमुख महिला खिलाड़ीमीराबाई चानूः वेटलिफ्टिंग की 48 किग्रा वर्ग में स्वर्ण जीतकर राष्ट्रमंडल खेलों में लगातार तीन बार गोल्ड हासिल करने वाली पहली भारतीय वेटलिफ्टर बनीं।अस्मिता डेः जूडो के 48 किग्रा वर्ग में ऐतिहासिक स्वर्ण पदक देश की झोली में डाला।शर्मिला धनखड़ः पैरा एथलेटिक्स (शॉट पुट स्न57) में स्वर्ण पदक जीतकर नया इतिहास रचा।मुक्केबाज प्रीति पवार, जैस्मीन लांबोरिया, साक्षी चौधरी, प्रिया घंघास और अरुंधती चौधरीः रिंग में बेहतरीन दांव-पेच दिखाते हुए मुक्केबाजी के विभिन्न भार वर्गों में पांच स्वर्ण पदक अपने नाम किए।अन्य उल्लेखनीय प्रदर्शन लवलीना बोरगोहीनः 75 किग्रा मुक्केबाजी वर्ग में रजत पदक जीता।हरजिंदर कौर और ज्ञानेश्वरी यादवः वेटलिफ्टिंग में रजत पदक हासिल किए।यामिनी मौयाः जूडो स्पर्धा में रजत पदक प्राप्त किया।

राष्ट्रमंडल खेलों में भारतीय खिलाड़ियों का प्रदर्शन हर भारतीय को गर्वित करने वाला तो है ही, यह भविष्य के लिए बहुत सारी उम्मीदें भी देता है।

आपको बता दें कि पदक तालिका में चौथे स्थान पर भारत उस स्थिति में खड़ा है, जब भारतीय खिलाड़ियों के दबदबे वाले कई खेल इस बार के आयोजन में शामिल ही नहीं किए गए थे। बावजूद इसके भारतीय खिलाड़ियों ने ग्लासगो में तिरंगे को बार-बार शिखर पर पहुंचाया और 140 करोड़ से अधिक देशवासियों को गौरवान्वित किया। भारत ने इन खेलों में कुल 39 पदक (13 स्वर्ण, 17 रजत और 9 कांस्य पदक) जीते।

हमारे खिलाड़ियों ने मुक्केबाजी, भारोत्तोलन और जूडो में शानदार प्रदर्शन किया है, बल्कि पहली बार बॉक्सिंग में सात स्वर्ण पदक जीते हैं। सबसे अहम बात यह है कि बेटियों ने स्वर्ण पदकों की झड़ी लगा दी। मीरा बाई चानू से जो शुरुआत हुई, तो फिर इस कतार में शर्मिला, अस्मिता, प्रीति पवार, साक्षी चौधरी, प्रिया धंधास, अरुंधति चौधरी, जैस्मिन जैसे नाम जुड़ते चले गए। अब ये सिर्फ नाम नहीं हैं, देश की हजारों-लाखों बेटियों की प्रेरणा-स्रोत हैं। इनमें से एकाधिक लड़कियां तो बेहद साधारण पृष्ठभूमि से आई हैं। उनका सबसे ऊंचे पोडियम पर खड़ा होना खास गौरवशाली है। वे न सिर्फ अपने जैसी अनगिनत प्रतिभाओं को प्रेरित करेंगी, बल्कि हमारे खेल से जुड़े कर्ता-धर्ताओं को और उत्साहित करेंगी कि वे ग्रामीण क्षेत्रों पर भी ध्यान दें।

अब जरा गौर कीजिए एक ओर जंतर-मंतर के प्रदर्शन में शामिल भद्दी अश्लील गाली देने वाली रीलबाज लड़कियाँ देश और दुनिया में जगहंसाइ व निंदा का पात्र बन गयीं हैं और दूसरी ओर ये बेटियां हैं जिन्होंने वर्षों की कठोर प्रशिक्षण और अभ्यास के बूते पर दुनिया में देश का नाम रोशन किया है ये स्वयं व इनके परिवार दशकों तक देश भर में सम्मान और गौरव का अनुभव करेंगे। सिर्फ एक सही राह और परवरिश कितना बड़ा अन्तर पैदा कर सकती है इसे शिद्दत से समूचा देश और खासकर अभिभावकों को महसूस करना चाहिए।

इसमें कोई दोराय नहीं कि बीते कुछ वर्षों में देश में खेल-संस्कृति का तेजी से विकास हुआ है। खासकर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की

दिलचस्पी और खेलो इंडिया जैसे कार्यक्रमों का इसमें अहम योगदान है। इस क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश भी बढ़ा है और बड़े पैमाने पर युवा अब इसे करियर के तौर पर अपनाने लगे हैं। हालांकि, इस संस्कृति के निर्माण में क्रिकेट का सबसे बड़ा योगदान है। आईपीएल की शुरुआत ने देश के छोटे-छोटे शहरों को कई सितारे दिए, और उन पर पैसों की बरसात ने समाज की पूरी मनोदशा बदल दी। परिवार अवरोधक के बजाय सहायक की भूमिका में आने लगे। सबसे बड़ा बदलाव तो लड़कियों के मामले में आया हैं। पहले बेटियों के लिए खेल-क्षेत्र में बहुत बाधाएं थीं, मगर अब वे भी सपने देख रही हैं और उनको साकार कर रही हैं। कॉमनवेल्थ गेम्स की पदक तालिका उनकी प्रतिभा और जिजीविषा की कहानी खुद कह रही है।

इस बड़े बदलाव का एक पहलू यह भी है कि अब भी हिंदी ह्दयस्थल के सूबों से एथलेटिक्स में उतने खिलाड़ी उभरकर सामने नहीं आ रहे, जितने हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, केरल, महाराष्ट्र, असम और मणिपुर जैसे प्रदेशों से निकल रहे हैं और यह बात इन राज्य-सरकारों को चुनौती के रूप में लेनी चाहिए। ऐसा नहीं कि इन राज्यों के पास प्रतिभाएं नहीं हैं। झारखंड ने क्रिकेट से इतर हॉकी, तीरंदाजी आदि खेल विधाओं में कई राष्ट्रीय सितारे दिए हैं। राज्य अगर खेल-संस्कृति को प्रोत्साहन दे, तो वहां से कई नए नाम देश को मिल सकते हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश को खेलों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। इसी कॉमनवेल्थ गेम्स में पैरा शॉटपुट में, बिहार के सोमन राणा का स्वर्ण पदक इस बात का सुबूत है कि अगर सही तलाश की जाए, तो इन दोनों सूबों के पास ऐसे युवाओं की कोई कमी नहीं, जो वैश्विक खेल प्रतिस्पर्द्धाओं में देश-प्रदेश का नाम ऊंचा कर सकें। अगले राष्ट्रमंडल खेलअहमदाबाद में होने वाले हैं।

आठ स्वर्ण पदकों ने न केवल भारत के अभियान को नई ऊंचाई दी, बल्कि यह भी साबित कर दिया कि भारतीय महिला खिलाड़ी अब केवल उभरती प्रतिभाएं नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय मंच पर लगातार स्वर्ण जीतने वाली चैंपियन बन चुकी हैं। भारतीय ओलंपिक संघ की अध्यक्ष पीटी ऊषा ने महिला खिलाड़ियों के प्रदर्शन पर गर्व जताते हुए एक अधिकारिक बयान में कहा, 'भारत के 13 स्वर्ण पदकों में से आठ महिलाओं के नाम होना बेहद गर्व की बात है। इन उपलब्धियों के पीछे खिलाड़ियों, उनके परिवारों, कोचों और सहयोगी स्टाफ का वर्षों का समर्पण है। भारतीय ओलंपिक संघ (आईओए) के अनुसार, ग्लासगो में मिली सफलता भारत में महिलाओं के सशक्तिकरण की व्यापक तस्वीर भी पेश करती है। शिक्षा, उद्यमिता, शासन और खेल सहित हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए किए जा रहे प्रयासों का सकारात्मक असर अब खेल मैदानों पर भी साफ दिखाई दे रहा है। लड़कियों को खेलों से जोड़ने वाली योजनाएं, बेहतर प्रशिक्षण सुविधाएं, खिलाड़ियों के लिए मजबूत सहायता तंत्र और महिला खिलाड़ियों को बढ़ता सम्मान इस बदलाव की मजबूत नींव बने हैं। नारी शक्ति वंदन अधिनियम महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रति देश की प्रतिबद्धता का प्रतीक है। वहीं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी लगातार महिला खिलाड़ियों का उत्साहवर्धन करते रहे हैं और उन्हें विश्व स्तर पर उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए प्रेरित करते रहे हैं। ग्लासगो में भारतीय महिला खिलाड़ियों का प्रदर्शन इसी व्यापक सोच और अवसरों के विस्तार का परिणाम है।

हमारी कोशिश होनी चाहिए कि हम पिछले कॉमनवेल्थ खेलों की पदक संख्या से बहुत आगे निकल सकें। देश अपनी इन बेटियों के स्वागत और सम्मान में पलक पावड़े बिछाकर तैयार है। (लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं पिछले 40 वर्ष से लेखन और पत्रकारिता में सक्रिय हैं।

कहो तो कह दूं - ठेकेदार ब्लैक लिस्ट हो जाएंगे तो इंजीनियर्स की रोजी रोटी का क्या होगा...

प्रदेश के लोक निर्माण मंत्री राकेश सिंह ने अपने इंजीनियर्स और अफसरों की बैठक में एक ऐसा सवाल पूछ लिया जिसको सुनकर सारे इंजीनियर्स और अफसरों की घिग्घी बँध गई । मंत्री जी ने अपने इंजीनियरों से कहा कि ये बताइए कि जिन ठेकेदारों ने ठीक काम नहीं किया उनमें से कितने ठेकेदारों को आपने ब्लैक लिस्ट कर दिया? ये सवाल सुनते ही सारे इंजीनियरों और अफसरों को जैसे सांप सूंघ गया वे कोई जवाब दे नहीं पाए किसी ने कहा लिस्ट अभी लंबित है बहुत जल्द हम आपको बता देंगे । अपने को तो एक बात समझ में नहीं आती कि मंत्री जी ने ऐसा कठिन सवाल पूछ क्यों लिया जो कभी इन लोगों के सिलेबस में ही नहीं रहा, अभी तक की नौकरी में जो सवाल ना कभी पूछा गया ना कभी परीक्षा के दौरान सामने आया वो मंत्री जी ने कैसे अपने प्रश्नपत्र में सेट कर दिया। दुनिया जानती है कि ठेकेदारों अफसरों और इंजिनियर्स के बीच तो चोली दामन का साथ होता है उसी का प्रतिफल होता है कि सड़क बनती है, पुल बनता है, या और कोई निर्माण होता है वो साल दो साल में उसी अवस्था में आ जाता है जिस अवस्था में काम शुरू हुआ था, और फिर यदि इंजीनियर और अफसर ठेकेदारों को ब्लैक लिस्ट करने लगे तो उनकी रोजी-रोटी कैसे चलेगी? उनके ही दम पर तो उनके सारे ऐशो आराम चलते आए हैं और चलते रहेंगे। जब तक चांद और सूरज रहेगा तब तक हमारा दोस्ताना बना रहेगाये नारा इनके बीच चलता रहता है मंत्री जी ने एक और सर दर्द इन के सिर पर डाल दिया है कि आप लोग निर्माण कार्यों का औचक निरीक्षण करो और अगर कोई गड़बड़ी होती है तो उस पर तत्काल कार्यवाही करो ,अभी तक तो ये होता था कि ठेकेदार ने पूरा काम कर दिया उसका पूरा पेमेंट भी हो गया हिस्सा भी जिन तक पहुंचना था उन तक पहुंच गया और मामला खत्म । साल दो साल बाद जब कोई गड़बड़ी आएगी तो फिर नए सिरे से उसको सुधारने का ठेका दे दिया एक दूसरे ठेकेदार को भी ओब्लाइज कर दिया जाएगा लेकिन अब मंत्री जी ने इसमें रोड़ा अटका दिया है कह रहे हैं कि काम के बीच में ही औचक निरीक्षण करो ताकि काम खत्म होने के पहले ही गड़बड़ियों का पता लग जाये । अपनी तो मंत्री जी से एक ही गुजारिश है कि ऐसे ऐसे कठिन सवाल आप इन लोगों के सामने मत रखिए जिनका उत्तर उनको मालूम ही नहीं है क्योंकि आज तक किसी ने ऐसा सवाल उनसे पूछा नहीं तो जो सवाल उनसे आज तक पूछा नहीं गया उसका जवाब वे बेचारे दें तो दें कहां से ? और यदि कामों में गड़बड़ी के आधार पर ठेकेदार ब्लैक लिस्ट होने लगे तो फिर तो प्रदेश में कोई ठेकेदार ऐसा बचेगा ही नहीं जो ब्लैक लिस्ट ना हो पाए। अब आप खुद ही सोचो कि बेचारे ठेकेदार करें तो क्या करें सही काम करते हैं तो पैसा बचता नहीं इसलिए गुणा भाग तो करना पड़ता है और जब गुणा भाग करना पड़ता है तो फिर अफसरों और इंजीनियरों को भी खुश करना पड़ता है क्योंकि यदि वो खुश नहीं होंगे तो समझ लो आप कितना ही अच्छा काम कर लो महीनों पेमेंट नहीं होगा इसलिए झंझट से बचने के लिए ठेकेदार भी वही करते हैं जो बरसों से चली आ रही परंपरा है उनको भी मालूम है कि इसी परंपरा का निर्वहन करने से उनका काम आसानी से संभव हो पाएगा लेकिन देखना पड़ेगा मंत्री जी ने जो सवाल उठाया है उसका किस तरह का जवाब ये इंजीनियर और अफसर देते हैं । प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ मोहन यादव ने एक ऐलान कर दिया कि बहुत हो गई मीटिंग, पीसी, अब हर शुक्रवार को मंत्रियों को, कलेक्टरों, को कमिश्नरों को जनता के दरवाजे पर जाना पड़ेगा और उनकी जो समस्याएं होंगी उन्हें उसी वक्त हल करना पड़ेगा और जो नहीं हल हो पा रही है उनके बारे में भी जनता को बताना पड़ेगा कि उनकी समस्या कैसे हल होगी। मुख्यमंत्री जी ने एक ऐसी आफत इन लोगों पर डाल दी है इसको लेकर ये तमाम लोग भारी हलाकान हो गए हैं वरना अभी तक रोज मीटिंगों और बैठकें चलती थी और इसी में पूरा दिन व्यतीत हो जाता था, जनता आती थी लेकिन साहब मीटिंग में है साहब पीसी में है कहकर उन्हें वापस लौटा दिया जाता था। अपने को तो पता लगा है कि मुख्यमंत्री जी को खबर मिली थी कि ये अफसर सिर्फ मीटिंगों का बहाना बनाकर जनता के काम नहीं करते इसलिए अब उन्होंने ऐलान कर दिया हैं कि जुमे के रोज कोई मीटिंग नहीं होगी सिर्फ एक ही काम होगा और वो होगा जनता के दरवाजे पर जाना, जो अफसर पूरे हफ्ते मीटिंग के नाम पर मजा मारते रहते थे अब उन्हें कष्ट होने वाला है वैसे देखना तो ये भी होगा कि मुख्यमंत्री जी के आदेश का पालन कितना होता है क्योंकि ना केवल डॉक्टर मोहन यादव, बल्कि पूर्व मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने भी कितनी बार कलेक्टरों कमिश्नरों से कहा है कि वे एक रात गांव में गुजारें लेकिन इसके कोई आंकड़े सामने नहीं आए कि कितने कमिश्नर कलेक्टर ने गांव में रात गुजारी।

चुनाव विश्लेषण- उपचुनावों का जनादेशः क्या बदल रहा है मतदाता का मिजाज?

लोकतांत्रिक राजनीति में कई बार छोटे चुनाव भी बड़े संदेश दे जाते हैं। विधानसभा उपचुनावों को लंबे समय तक केवल रिक्त सीटों को भरने की औपचारिक प्रक्रिया माना जाता रहा है। सामान्य धारणा यही रही कि जिस राज्य में जिस दल की सरकार होती है, प्रशासनिक बढ़त, संगठनात्मक शक्ति और सत्ता के प्रभाव के कारण वही दल उपचुनाव आसानी से जीत जाता है। इसी कारण उपचुनावों के परिणामों को व्यापक राजनीतिक संकेतक के रूप में कम ही देखा जाता था किंतु पिछले कुछ वर्षों में यह धारणा तेजी से बदली है। अब उपचुनाव केवल एक सीट का फैसला नहीं करते बल्कि जनता के तत्कालीन मनोभाव, सरकार के प्रति संतोष-असंतोष, संगठन की मजबूती, नेतृत्व की स्वीकार्यता और भविष्य की राजनीतिक दिशा के संकेत भी देते हैं। बिहार के बांकीपुर, मध्य प्रदेश के दतिया और गुजरात के मांझलपुर विधानसभा उपचुनावों ने भी यही संदेश दिया है। तीन सीटों में से दो पर भाजपा की हार और केवल एक पर जीत ने राजनीतिक विश्लेषकों को यह सोचने पर विवश कर दिया है कि क्या ये केवल स्थानीय परिस्थितियों का परिणाम हैं अथवा भाजपा के सामने उभर रही नई राजनीतिक चुनौतियों का प्रारंभिक संकेत? उपचुनाव सत्ता परिवर्तन का जनादेश नहीं होते किंतु वे जनता के बदलते मानस की पहली आहट अवश्य होते हैं और यही कारण है कि इन परिणामों को गंभीरता से समझने की आवश्यकता है।

सबसे अधिक चर्चा बिहार की बांकीपुर सीट की रही। यह सीट केवल एक विधानसभा क्षेत्र नहीं थी बल्कि भाजपा की राजनीतिक प्रतिष्ठा का प्रतीक मानी जाती थी। लगभग तीन दशक से यह भाजपा का अभेद्य दुर्ग रहा। पहले भाजपाध्यक्ष नितिन नवीन के पिता और बाद में स्वयं नितिन नवीन लगातार यहां विजय प्राप्त करते रहे। नितिन नवीन के राज्यसभा सदस्य बनने के बाद यह सीट रिक्त हुई और भाजपा को अटूट विश्वास था कि उसका यह गढ़ सुरक्षित रहेगा किंतु जन सुराज पार्टी के संस्थापक प्रशांत किशोर ने न केवल भाजपा का यह किला ध्वस्त कर दिया बल्कि बिहार की राजनीति में नए विकल्प की संभावनाओं को भी मजबूत कर दिया। यह परिणाम केवल भाजपा की हार नहीं बल्कि उसकी रणनीतिक चूक का भी परिणाम माना जा रहा है। उम्मीदवार चयन में अंतिम समय तक बना भ्रम, स्थानीय कार्यकर्ताओं की असंतुष्टि और अत्यधिक आत्मविश्वास ने पार्टी को नुकसान पहुंचाया। लंबे समय तक किसी सीट पर लगातार जीत कभी-कभी संगठन में आत्मसंतोष पैदा कर देती है। यही स्थिति बांकीपुर में दिखाई दी। भाजपा ने शायद मान लिया था कि उसका पारंपरिक वोट बैंक और संगठनात्मक नेटवर्क किसी भी परिस्थिति में जीत सुनिश्चित कर देगा जबकि मतदाता पहले की तुलना में अधिक सजग और स्वतंत्र निर्णय लेने वाला बन चुका है। बांकीपुर का परिणाम प्रशांत किशोर के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। चुनावी रणनीतिकार के रूप में अनेक दलों को सफलता दिलाने वाले प्रशांत किशोर पहली बार स्वयं चुनावी परीक्षा में उतरे और सफल हुए। हालांकि विधानसभा चुनाव में उनकी पार्टी पूरी तरह विफल रही थी किंतु इस विजय ने सिद्ध कर दिया कि यदि कोई दल लगातार जनता के बीच बना रहे और स्थानीय मुद्दों को प्रभावी ढंग से उठाए तो वह स्थापित राजनीतिक समीकरणों को चुनौती दे सकता है। यह जीत बिहार में तीसरे राजनीतिक विकल्प की संभावनाओं को भी बल देती है।

दूसरी ओर मध्य प्रदेश की दतिया सीट भाजपा के लिए और अधिक चिंता का विषय है। भाजपा की यह हार केवल विपक्ष की सफलता नहीं बल्कि भाजपा संगठन के भीतर असंतोष की अभिव्यक्ति भी मानी जा रही है। पूर्व गृहमंत्री नरोत्तम मिश्रा का टिकट काटे जाने के बाद उनके समर्थकों की नाराजगी चुनाव अभियान के दौरान लगातार चर्चा में रही। चुनावी राजनीति में उम्मीदवार केवल पार्टी का प्रतिनिधि नहीं होता बल्कि स्थानीय संगठन की भावनाओं का केंद्र भी होता है। जब कार्यकर्ता स्वयं उत्साहहीन हो जाएं या भीतरघात की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो मजबूत संगठन भी अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाता। दतिया का परिणाम इसी सत्य की पुष्टि करता है। मध्य प्रदेश भाजपा लंबे समय तक शिवराज सिंह चौहान के नेतृत्व में अत्यंत मजबूत संगठनात्मक ढांचे के लिए जानी जाती रही। संगठन, सरकार और जनता के बीच संवाद की जो परंपरा विकसित हुई थी, नेतृत्व परिवर्तन के बाद उसे उसी प्रभावशीलता से बनाए रखना नई सरकार के लिए चुनौती बना हुआ है। उपचुनावों ने संकेत दिया है कि केवल सत्ता में होना पर्याप्त नहीं, संगठन की एकजुटता और स्थानीय नेतृत्व की स्वीकार्यता भी उतनी ही आवश्यक है।

गुजरात के मांझलपुर में भाजपा ने जीत दर्ज कर अपनी संगठनात्मक क्षमता का प्रदर्शन अवश्य किया किंतु मतों के अंतर में आया परिवर्तन संकेत देता है कि वहां भी विपक्ष धीरे-धीरे अपनी जमीन मजबूत करने का प्रयास कर रहा है। यद्यपि गुजरात में भाजपा की स्थिति अभी भी सुदृढ़ है, फिर भी चुनावी आंकड़े बताते हैं कि किसी भी राजनीतिक दल के लिए आत्मसंतोष उचित नहीं हो सकता। इन उपचुनावों की चर्चा का एक महत्वपूर्ण पक्ष 'जेन-जी आंदोलन' भी रहा। चुनाव 30 जुलाई को ऐसे समय हुए, जब प्रतियोगी परीक्षा, पेपर लीक, रोजगार, अवसरों की कमी, प्रशासनिक जवाबदेही इत्यादि युवाओं से जुड़े मुद्दे राष्ट्रीय विमर्श के केंद्र में थे। निश्चित रूप से यह कहना कठिन होगा कि केवल इसी आंदोलन ने चुनाव परिणामों को प्रभावित किया क्योंकि प्रत्येक उपचुनाव में स्थानीय समीकरण, उम्मीदवार की लोकप्रियता और संगठनात्मक स्थिति कहीं अधिक निर्णायक भूमिका निभाते हैं। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि युवाओं के बीच बढ़ती असंतुष्टि का व्यापक राजनीतिक वातावरण पर प्रभाव पड़ता है। यदि युवा मतदाता किसी सरकार के प्रति निराशा महसूस करता है तो उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव चुनावी व्यवहार पर भी दिखाई दे सकता है। आज का मतदाता (विशेषकर युवा वर्ग) केवल जातीय या पारंपरिक राजनीतिक पहचान के आधार पर मतदान नहीं कर रहा, रोजगार, शिक्षा, भ्रष्टाचार, पारदर्शिता, सुशासन, अवसरों की समानता और प्रशासनिक उत्तरदायित्व जैसे मुद्दे उसकी प्राथमिकता बनते जा रहे हैं।

भाजपा के सामने क्या राजनीतिक आत्ममंथन का समय है?

लोकतंत्र में कुछ चुनाव ऐसे होते हैं जिनका महत्व उनके आकार से नहीं, बल्कि उनके संदेश से तय होता है। उपचुनाव सामान्यतः किसी सरकार का जनादेश नहीं माने जाते, क्योंकि वे स्थानीय परिस्थितियों, उम्मीदवारों और तत्कालीन राजनीतिक समीकरणों से भी प्रभावित होते हैं। फिर भी कई बार यही छोटे चुनाव बड़े राजनीतिक संकेत छोड़ जाते हैं। वे सत्ता को यह बताते हैं कि जनता किस बात से संतुष्ट है और किस बात से बेचैन। इतिहास गवाह है कि अनेक बार उपचुनावों ने आने वाले बड़े चुनावों की राजनीतिक दिशा का पूर्वाभास कराया है।

बिहार के बांकीपुर और मध्य प्रदेश के दतिया उपचुनावों के परिणामों ने भारतीय जनता पार्टी के सामने ऐसे ही कुछ प्रश्न खड़े किए हैं। विशेष रूप से बांकीपुर का परिणाम इसलिए अधिक चर्चा में है कि इसे लंबे समय से भाजपा का मजबूत गढ़ माना जाता रहा था। तीन दशकों से अधिक समय तक इस सीट पर पार्टी की लगातार मौजूदगी ने यह धारणा बना दी थी कि यहाँ भाजपा की राजनीतिक पकड़ लगभग अटूट है। ऐसे में अप्रत्याशित हार ने स्वाभाविक रूप से राजनीतिक विश्लेषकों का ध्यान आकर्षित किया है।

उपचुनाव के तुरंत बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री और जनता दल (यूनाइटेड) के प्रमुख नेता नीतीश कुमार से हुई मुलाकात ने भी राजनीतिक अटकलों को बल दिया। औपचारिक रूप से इसे बिहार और पूर्वी भारत के विकास से जुड़ी सामान्य बैठक बताया गया, लेकिन राजनीति में समय का अपना महत्व होता है। जब कोई महत्वपूर्ण बैठक किसी अप्रत्याशित चुनावी परिणाम के तुरंत बाद होती है, तो उसके राजनीतिक अर्थ तलाशना स्वाभाविक हो जाता है। यह आवश्यक नहीं कि हर मुलाकात संकट का संकेत हो, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि चुनावी झटकों के बाद सहयोगी दलों के साथ संवाद बढ़ाना किसी भी गठबंधन सरकार की सामान्य राजनीतिक रणनीति होती है।

इसी बीच भाजपा की वरिष्ठ नेता यशोधरा राजे सिंधिया का सोशल मीडिया पर किया गया संक्षिप्त संदेश–आत्मनिरीक्षण का समय–भी व्यापक चर्चा का विषय बना। लोकतांत्रिक दलों में चुनावी समीक्षा कोई असामान्य प्रक्रिया नहीं होती। किसी वरिष्ठ नेता द्वारा आत्ममंथन की आवश्यकता पर बल देना राजनीतिक परिपक्वता का संकेत भी माना जा सकता है। विशेष रूप से तब, जब वह नेता लंबे सार्वजनिक जीवन का अनुभव रखता हो और संगठन के भीतर उसकी अलग पहचान हो। किसी भी बड़े राजनीतिक दल की शक्ति केवल चुनाव जीतने में नहीं, बल्कि हार के कारणों को समझने और उनसे सीखने की क्षमता में भी निहित होती है।

दरअसल, पिछले कुछ वर्षों में भारतीय राजनीति का स्वरूप तेजी से बदला है। अब केवल मजबूत संगठन, प्रभावशाली नेतृत्व या चुनावी प्रबंधन पर्याप्त नहीं रह गया है। मतदाता पहले की तुलना में अधिक जागरूक, अधिक अपेक्षाकारी और अधिक निर्णायक दिखाई देता है। वह राष्ट्रीय नेतृत्व का सम्मान करते हुए भी स्थानीय मुद्दों, उम्मीदवारों की स्वीकार्यता, सामाजिक समीकरणों और शासन के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर अलग-अलग चुनावों में अलग निर्णय लेने लगा है। यही कारण है कि आज उपचुनावों को भी राजनीतिक मनोविज्ञान की दृष्टि से गंभीरता से पढ़ा जाता है।

बिहार के संदर्भ में यह चुनाव इसलिए भी महत्वपूर्ण माना जा रहा है क्योंकि राज्य में हाल में हुए नेतृत्व परिवर्तन के बाद जनता की प्रतिक्रिया का यह पहला बड़ा अवसर था। किसी भी राजनीतिक परिवर्तन का वास्तविक परीक्षण चुनावी मैदान में ही होता है। सरकारें चाहे कितने भी दावे करें, अंततः मतदाता ही यह तय करता है कि वह बदलाव को स्वीकार कर रहा है या उसके प्रति संदेह रखता है। ऐसे में बांकीपुर का परिणाम केवल एक निर्वाचन क्षेत्र का फैसला नहीं, बल्कि व्यापक राजनीतिक विमर्श का हिस्सा बन गया है।

हालाँकि किसी एक उपचुनाव के आधार पर दूरगामी निष्कर्ष निकालना भी उचित नहीं होगा। भारतीय राजनीति में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहाँ उपचुनावों के परिणाम बाद के आम चुनावों से बिल्कुल अलग रहे हैं। इसलिए इन नतीजों को अंतिम जनादेश के बजाय एक राजनीतिक संकेत के रूप में देखना अधिक संतुलित दृष्टिकोण होगा। लेकिन संकेतों की अनदेखी भी लोकतंत्र में अक्सर महँगी साबित होती है। चुनाव परिणाम कभी-कभी आँकड़ों से अधिक मनःस्थिति का परिचय देते हैं, और राजनीतिक दलों के लिए मतदाताओं की मनःस्थिति को समझना ही सबसे बड़ी चुनौती होती है।

यही वह संदर्भ है जिसमें बांकीपुर और दतिया के परिणाम केवल दो सीटों की कहानी नहीं रह जाते। वे यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या मतदाताओं की प्राथमिकताएँ बदल रही हैं, क्या गठबंधन राजनीति नए संतुलन की तलाश में है, और क्या युवाओं, रोजगार तथा शासन से जुड़े मुद्दे अब चुनावी विमर्श के केंद्र में अधिक मजबूती से लौट रहे हैं। इन प्रश्नों के उत्तर ही तय करेंगे कि यह हार केवल एक चुनावी दुर्घटना थी या किसी बड़े राजनीतिक बदलाव की प्रारंभिक आहट।

बांकीपुर उपचुनाव के बाद सबसे अधिक चर्चा जिस प्रश्न की हुई, वह केवल हार का कारण नहीं, बल्कि उसके राजनीतिक अर्थ का था। किसी भी गठबंधन सरकार में चुनावी परिणाम केवल एक दल का मूल्यांकन नहीं करते, बल्कि सहयोगियों के बीच विश्वास, नेतृत्व की स्वीकार्यता और सामाजिक समीकरणों की मजबूती की भी परीक्षा लेते हैं। यही कारण है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और नीतीश कुमार की मुलाकात को राजनीतिक हलकों में सामान्य शिष्टाचार से अधिक महत्व दिया गया।

औपचारिक रूप से यह कहा गया कि बातचीत बिहार और पूर्वी भारत के विकास से जुड़े मुद्दों पर केंद्रित थी। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि सरकार का काम विकास योजनाओं पर चर्चा करना ही है। लेकिन राजनीति में समय और परिस्थितियाँ अक्सर संदेश का हिस्सा बन जाती हैं। चुनावी झटके के तुरंत बाद हुई किसी भी उच्चस्तरीय बैठक को राजनीतिक संदर्भों से अलग करके देखना आसान नहीं होता। यदि सहयोगी दलों के नेताओं से चुनावी प्रतिक्रिया भी ली गई हो, तो यह किसी भी लोकतांत्रिक दल के लिए असामान्य प्रक्रिया नहीं कही जाएगी।